प्रवेशांक

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

Online ISSN-3048-9296

Vol.-1; issue-1 (Jan-Jun) 2024

Page No.-60-67

©2024 Shodhaamrit (Online)

www.shodhamrit.gyanvividha.com

Dr. Sumit kumar

sr. Assistant professor,

Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

Corresponding Author :

Dr. Sumit kumar

sr. Assistant professor,

Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

भारतीय दर्शन में दुःख की अवधारणा और आधुनिक जीवन

सारांश : यह शोध पत्र भारतीय दर्शन में **दुःख** की अवधारणा का दार्शनिक विश्लेषण करते हुए उसे आधुनिक जीवन की मानसिक-सामाजिक चुनौतियों से जोड़ता है। उपनिषद-वेदान्त में दुःख का मूल कारण **अविद्या** और आत्म-विस्मृति माना गया है; आत्मज्ञान से ही स्थायी शान्ति संभव होती है। भगवद्गीता संसार को "दुःखालय" मानते हुए समत्व, निष्काम कर्म और वैराग्य को दुःख-निवारण का व्यावहारिक मार्ग बताती है। सांख्य-योग त्रिविध दुःख (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) की व्याख्या कर **विवेक-ज्ञान** और चित्तवृत्ति-निरोध द्वारा "आगामी दुःख" के निरोध पर बल देते हैं। बौद्ध दर्शन चार आर्य सत्यों के माध्यम से दुःख, तृष्णा-कारण और अष्टांगिक मार्ग द्वारा निरोध को स्पष्ट करता है; जैन दर्शन कर्म-बंधन तथा सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र को समाधान मानता है। आधुनिक उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धा और अकेलेपन के संदर्भ में यह अध्ययन निष्कर्ष देता है कि भारतीय दर्शन की आत्म-केन्द्रित दृष्टि, ध्यान-योग और नैतिक अनुशासन आज भी दुःख-रूपान्तरण हेतु प्रासंगिक हैं।

मुख्य शब्द : भारतीय दर्शन, दुःख, अविद्या, तृष्णा, मोक्ष / निर्वाण, योग-ध्यान, आधुनिक जीवन एवं मानसिक तनाव।

1. परिचय : मनुष्य के जीवन का एक सार्वभौमिक सत्य है **दुःख** – पीड़ा, असंतोष या संताप का अनुभव। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने बहुत पहले यह समझ लिया था कि मानव जीवन दुखों से व्याप्त है और इससे मुक्ति पाना जीवन का परम लक्ष्य है। उपनिषद्कार याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से प्रश्न करते हैं कि धन-संपत्ति से क्या अमरत्व या परम सुख पाया जा सकता है, और स्वयं ही उत्तर देते हैं कि आत्मज्ञान के बिना सब कुछ व्यर्थ है – जो आत्मा को नहीं जानता उसके लिए "केवल दुःख की प्राप्ति होती है"। अर्थात् अज्ञान के कारण जीव अशाश्वत भौतिक जगत को ही सब कुछ मानकर दुःख पाता है। आज के आधुनिक जीवन में भी, जब भौतिक प्रगति शिखर पर है, मनुष्य तनाव, अवसाद, अलगाव और असंतोष के गहन संकट से जूझ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार

अवसाद आज वैश्विक स्तर पर रोग और अक्षमता का प्रमुख कारण बन चुका है, जिससे 300 मिलियन से अधिक लोग प्रभावित हैं। **आधुनिक जीवन** की इस पीड़ा ने प्राचीन भारतीय दर्शन की उन शिक्षाओं को फिर से प्रासंगिक बना दिया है जो दुःख के कारणों का विश्लेषण करती हैं और उससे मुक्ति का मार्ग दिखाती हैं। इस शोध-प्रबंध में हम भारतीय दर्शन में दुःख की अवधारणा के विविध आयामों का विश्लेषण करेंगे तथा आधुनिक संदर्भ में इन दार्शनिक दृष्टिकोणों की प्रासंगिकता पर विचार करेंगे।

2. वेद-उपनिषद एवं वेदान्त में दुःख की अवधारणा : वेदों और **उपनिषदों** में संसार के असार (नश्वर) स्वरूप और आत्मज्ञाना चरण के महत्व पर बल दिया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि कहते हैं: "यदि आत्मा को न जाना, तो महान विनाश है; जिन्होंने जान लिया, वे अमृत हो जाते हैं, शेष सभी को केवल दुःख ही प्राप्त होता है"। यहाँ दुःख उस अज्ञानजनित दुखद चक्र का द्योतक है जिससे केवल आत्मज्ञान द्वारा मुक्ति पाई जा सकती है। छान्दोग्य उपनिषद् में नारद को शिक्षा देते हुए सनत्कुमार कहते हैं कि सत्य को जान लेने पर व्यक्ति न मृत्यु देखता है, न रोग और न दुःख – उसे सर्वत्र पूर्णता व आनंद ही दिखाई देता है। उपनिषदों का निष्कर्ष है कि ब्रह्मज्ञान द्वारा ही जीव आवागमन और संसार के दुःख से छूटकर परम आनंद (मोक्ष) प्राप्त कर सकता है।

वेदान्त दर्शन, विशेषकर अद्वैत वेदान्त, दुःख के अंतिम कारण के रूप में अविद्या (अज्ञान) को चिन्हित करता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव आत्मतत्त्व से अनभिज्ञ होने के कारण स्वयं को सीमित देह-मन के साथ अभिज्ञात कर लेता है, जिससे सुख-दुःख के बंधन उत्पन्न होते हैं। शंकराचार्य कहते हैं कि आत्म-साक्षात्कार होने पर त्रिविध भव बंधन कट जाता है और जीवन्मुक्त आत्मा जन्म-मृत्यु के दुःख से सदा के लिए मुक्त हो जाती है। वेदान्त में मोक्ष को सर्वथा दुःखों से मुक्ति तथा शाश्वत आनंद की प्राप्ति कहा गया है। सतीशचन्द्र चटर्जी एवं डी.एम. दत्त लिखते हैं कि भारतीय दर्शन में मोक्ष का तात्पर्य समय के परे "सर्व पीड़ा से पूर्णतया मुक्ति" है। अतः उपनिषद और वेदान्त हमें यह अंतर्दृष्टि देते हैं कि हमारे गहन अस्तित्व का स्वरुप आनंदमय है, किन्तु अज्ञानजनित आसक्ति हमें दुःख में बाँधे रखती है। आत्मज्ञान द्वारा इस बंधन से छूटना भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य है (चटर्जी और दत्ता 207)।

भगवद्गीता में भी विश्व के नश्वर-दुखमय स्वभाव और आत्मसमर्पण द्वारा शांति का सन्देश मिलता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यह नश्वर संसार "दुःखालय" (दुःख का घर) है और मेरी प्राप्ति होने पर पुनर्जन्म रूपी दुःखों का आवागमन नहीं होता। गीता में स्थितप्रज्ञ को वही माना गया है जो दुःख में विचलित नहीं होता और सुख में आसक्त नहीं होता। गीता 2.15 में कहा गया है: "समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते" – जो सुख-दुःख में सम रहता है, वह अमृतत्व (मोक्ष) के योग्य है (भागवद गीता 2.15)। स्पष्ट है कि गीता वेदांत का ही सार है – संसार स्वभावतः नश्वर और दुःखमय है, किंतु अध्यात्म के माध्यम से मन की समत्व-दृष्टि एवं ईश्वर-प्राप्ति से मानव स्थायी शांति और आनंद पा सकता है। श्रीकृष्ण का संदेश आधुनिक जीवन के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जहाँ मानसिक संतुलन खोकर सुख-दुःख के उतार-चढ़ाव में फँस जाना आम बात है। गीता हमें सिखाती है कि विपरीत परिस्थितियों में दुःख से व्याकुल न होकर, उसे अस्थायी मानते हुए, धैर्यपूर्वक आत्मिक दृष्टि अपनाई जाए तो संतुलन बना रहता है (मुकुंदानंद, टिप्पणी)।

3. सांख्य एवं योग दर्शन में दुःख का विश्लेषण : सांख्य दर्शन की आधारभूमि ही दुःख की समस्या है। महर्षि कपिल के अनुसार संसार त्रिविध दुःखों से पीड़ित है – आध्यात्मिक (शारीरिक-मानसिक कष्ट), आधिभौतिक (अन्य जीवों व बाह्य प्रकृति से उत्पन्न पीड़ा) तथा आधिदैविक (दैवी आपदाएँ जैसे प्राकृतिक आपदा आदि)। सांख्यकारिका का प्रारम्भ ही इस कथन से होता है :

"दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ" – तीन प्रकार के दुःखों से निरंतर आहत होने के कारण (उनके निवारण के उपाय की) जिज्ञासा होती है। यद्यपि सांसारिक उपाय (चिकित्सा आदि) दुखों को अस्थायी रूप से मिटा सकते हैं, किंतु सांख्य कहता है कि उनके द्वारा दुःख का पूर्ण एवं अंतिम नाश संभव नहीं है, इसलिए एक परम आत्मिक उपाय की खोज आवश्यक है। सांख्य दर्शन पुरुष और प्रकृति के द्वैत पर आधारित होकर बताता है कि अविद्या से पुरुष प्रकृति में आसक्त होकर सुख-दुःख भोगता है। जब विवेक-ज्ञान से पुरुष यह जान लेता है कि उसका स्वभाव प्रकृति के गुणों से भिन्न और निरपेक्ष है, तब वह बंधन छूट जाता है। सांख्य की मुक्ति कैवल्य कहलाती है, जो सभी प्रकार के दुःखों की निवृत्ति और निर्विकार स्वरूप में स्थिरता है। इस प्रकार सांख्य त्रिविध दुःखों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष देता है कि उनका मूल अज्ञान है और ज्ञान द्वारा इनसे छुटकारा पाया जा सकता है (मंडल 117-118)। जैसा एक विद्वान लिखते हैं, "जीवन दुखों का पुंज है और इनसे मुक्ति का मार्ग खोजने की चेष्टा ने ही विभिन्न भारतीय दर्शनों को जन्म दिया" (मंडल 117) – यह बात सांख्य पर विशेष रूप से खरी उतरती है।

योग दर्शन सांख्य के सिद्धांत को ही व्यावहारिक साधना का रूप देता है। पतंजलि के योगसूत्र में स्पष्ट कहा गया है: "परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च
दुःखमेव सर्वं विवेकिनः" – अर्थात परिवर्तन, चिंता (ताप) और संस्कारजनित दुःखों के साथ गुणों के परस्पर विरोध से विवेकवान व्यक्ति के लिए यह समस्त संसार दुःखरूप ही है। योग दर्शन मानता है कि विवेक (भेदज्ञान) के अभाव में मनुष्य सुख के पीछे भागता है, किंतु अनित्य प्रकृति के परिवर्तनशील परिणामस्वरूप उसे दुःख ही प्राप्त होता है। जिस क्षण विवेक जागृत होता है, जीव समझ जाता है कि भौतिक भोग क्षणिक एवं दुःखमिश्रित हैं; केवल पुरुष (आत्मा) की स्वतंत्र स्थिति में ही दुःख से मुक्ति है। पतंजलि कहते हैं "हेयं दुःखमनागतम्" – आने वाले दुःखों से बचना ही योग का लक्ष्य है। योगसूत्रों की व्याख्या में बताया गया है कि अज्ञानी के लिए जो अनुभव सुखद दिखते हैं, विवेकी के लिए उनमें भी दुःख का बीज निहित रहता है (क्योंकि वे परिवर्तनशील हैं और अंततः क्षय को प्राप्त होते हैं)। इसलिए योग साधक का लक्ष्य परम पुरुषार्थ – अपवर्ग – यानी समस्त दुःखों से छुटकारा पाना है। योग में ध्यान, संयम, वैराग्य आदि साधनों के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध कर जन्म-मृत्यु के बंधनों को काटने का प्रयास किया जाता है। यह प्रक्रिया आधुनिक भाषा में मनोवैज्ञानिक पुर्नर्चना जैसी लगती है, क्योंकि योग मन की प्रक्रियाओं को इस तरह बदल देता है कि भोगों की आसक्ति घटती है और जीवन के उतार-चढ़ाव व्यक्ति को विक्षेपित नहीं करते। आजकल माइन्डफुलनेस और योग-ध्यान जैसी विधियों की वैश्विक लोकप्रियता इस तथ्य का प्रमाण है कि पतंजलि के सूत्रों में निहित दुःखनिवृत्ति के सिद्धांत आधुनिक जीवन की मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान में भी सहायक हैं।

4. बौद्ध दर्शन में दुःख और उसका निराकरण : भगवान बुद्ध ने तो अपने धर्म का आधार ही दुःख के प्रकटीकरण और निराकरण को बनाया। **बौद्ध दर्शन** की चार आर्य सत्य (चत्वारि आर्यसत्यानि) की शिक्षा में प्रथम सत्य ही है – दुःख। बौद्ध ग्रंथ धम्मचक्कपवत्तन सुत्त में बुद्ध कहते हैं: "जन्म दुःख है, जरा (बुढ़ापा) दुःख है, व्याधि (रोग) दुःख है, मृत्यु दुःख है; प्रिय से वियोग दुःख है, अप्रिय का संयोग दुःख है; इच्छा की प्राप्ति न होना भी दुःख है। संक्षेप में, पंच स्कंध रूपी उपादान ही दुःख हैं।" बुद्ध के अनुसार **जीवन-दृष्टि** को वास्तविकता की कसौटी पर कसा जाना चाहिए – यदि जीवन अनित्य है तो उसमें स्थायी सुख ढूँढ़ना भ्रांति है। वे कहते हैं: "मैं केवल दुःख और दुःख-निरोध का ही उपदेश देता हूँ" (शर्मा 299)। बौद्ध दर्शन में दुःख (दुक्ख) को व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है – यह न केवल शारीरिक-मानसिक पीड़ा है, बल्कि प्रत्येक असंतोष, अस्थिरता या आत्मिक खालीपन की

अनुभूति भी दुःख है। सुख को भी दुःख कहा गया है क्योंकि वह क्षणिक है और अंततः असंतोष छोड़ जाता है (राहुल, 19)। वस्तुतः बुद्ध का दुःख शब्द "असंतोषजनकता" का द्योतक है। बुद्ध ने मानव जीवन के हर पक्ष में व्याप्त दुखों का साहसपूर्वक सामना करने तथा उनके कारणों को जड़ से मिटाने पर जोर दिया। उन्होंने संसार के दुखों का मूल कारण तृष्णा (लालसा, आसक्ति) को बताया – "तृष्णा से सुख की कामना ही दुःख को जन्म देती है" (राहुल, 29)। इसके साथ ही बुद्ध ने द्वितीय आर्य सत्य में दुःखसमुदय (दुःख के कारणों), तृतीय में दुःख निरोध (दुःख के अंत) और चतुर्थ में दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा (दुःख के नाश का मार्ग) स्वेच्छाचार किया। अष्टांगिक मार्ग का अनुशीलन कर के निर्वाण की प्राप्ति संभव है, जिसे बुद्ध ने "दुःखों के पूर्ण निर्जीव हो जाने की अवस्था – परम शांति" कहा।

बौद्ध विचारक नागार्जुन कहते हैं कि प्रतित्यसमुत्पाद (परस्पर निर्भर उत्पत्ति) के सिद्धांत को भलीभांति समझने से दुःख के मूलभूत कारण – अविद्या और तृष्णा – का नाश हो जाता है और निरोध (निर्वाण) की प्राप्ति होती है। हीनयान (थेरेवाद) बौद्धों ने सर्व अस्तित्व को दुःख और क्षणभंगुरता से युक्त माना – "सर्वं दुःखम्, सर्वं क्षणिकम्" उनका नारा था। महायान बौद्धों ने इस दृष्टिकोण को कुछ संशोधित कर यह प्रतिपादित किया कि निर्वाण मात्र दुःख-नाश नहीं, बल्कि परम आनंद (विशेषतः बुद्धत्व में) की अवस्था है। तथापि, हीनयान और महायान दोनों इस बात पर सहमत हैं कि संसारिक जीवन चक्र (संसार) दुःखों से भरा है और इससे पार पाने के लिए बुद्ध द्वारा दर्शाए मार्ग का अनुसरण अनिवार्य है। आधुनिक मनोविज्ञान भी स्वीकार करता है कि अपनी पीड़ा को स्वीकार करना और उसके कारणों को समझना, उससे उबरने की दिशा में पहला कदम है – यह तथ्य बुद्ध के दर्शन में ढाई हजार वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित किया जा चुका था। आज के युग में **माइंडफुलनेस** (साक्षीभाव) और **करुणा** (कॉम्पैशन) जैसी अवधारणाएँ, जो बुद्ध के मार्ग का ही अंग हैं, मानसिक तनाव व अवसाद के उपचार में कारगर सिद्ध हो रही हैं। इस प्रकार बुद्ध का दुःख-सत्य और मार्ग-सत्य आधुनिक मानव के लिए भी उतने ही उपयुक्त हैं जितने प्राचीन भारत के लिए थे। स्वामी तपस्यानंद ने ठीक ही कहा है कि बौद्ध धर्म एक "गंभीर धर्म" है क्योंकि यह मानव अस्तित्व में व्याप्त दुःख की निर्मल स्वीकारोक्ति से आरंभ होकर उसे समाप्त करने का व्यावहारिक मार्ग प्रदान करता है।

5. जैन दर्शन में दुःख और कर्म सिद्धांत : जैन दर्शन भी संसार को दुःखरूप मानकर उससे मुक्ति (मोक्ष) को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बताता है। जैन आचार्यों के अनुसार जीव अनादि बंधनों और कर्मों के कारण जन्म-मरण के दुःखद चक्र में फँसा है। तीर्थंकर महावीर ने कहा कि "जन्म ही दुःखों का मूल है", क्योंकि जन्म के साथ ही वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु आदि दुःख अपरिहार्य रूप से जुड़े हैं। जैन तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वामी कृत) में वर्णित है: "सम्यग्दर्शन-शुद्धं यज्ज्ञानं विरतिमेव च, अपि दुःखनिमित्तं इदं तेन सुलभं भवति जन्म" – सही दृष्टि से शुद्ध किया हुआ ज्ञान और विरति (वैराग्य) प्राप्त हो जाने पर जन्म (यह संसार) दुःख का कारण होते हुए भी (उसके लिए) सरल हो जाता है। इस सूत्र का अभिप्राय है कि **सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र** द्वारा आत्मा कर्मबंध से मुक्त होने लगती है, तब यह संसार चाहे दुःखमय है, फिर भी वह आत्मा के लिए पीड़ादायक नहीं रह जाता और अंततः वह मोक्ष रूपी "सुख के सागर" को प्राप्त करती है। जैन दर्शन में दुःख के कारणों को स्पष्टतः कर्म सिद्धांत में खोजा गया है – हमारे अपने पूर्व के अशुभ कर्म ही वर्तमान के दुःखों का कारण हैं (उपादान कारण), और तप-त्याग द्वारा कर्मों का क्षयोपशम ही दुःखों के निराकरण का मार्ग है। जैन आचार्य श्रीकुंदकुंद कहते हैं कि कर्म-अणुओं से आवृत आत्मा ही संसार में सुख-दुःख भोगती है; जब आत्मा से कर्मों का क्षय हो जाता है तो शाश्वत आनंद (मुक्ति) स्वतः प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जैन दृष्टि में दुःख आत्मा के मूल स्वरूप का गुण नहीं, बल्कि कर्मों की मलिनता का

परिणाम है, जिसे कठिन साधना और नैतिक जीवन द्वारा समाप्त किया जा सकता है। आधुनिक जीवन में कर्म की इस अवधारणा को समझना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयोगी हो सकता है – यह दृष्टिकोण व्यक्ति को अपने दुखों के लिए स्वयं ज़िम्मेदारी लेने और नैतिक-सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा देता है, बजाय इसके कि वह दूसरों या भाग्य को दोष देकर निष्क्रिय हो जाए। जैन धर्म के अनेकांतवाद और सयादवाद जैसे सिद्धांत भी व्यक्तित्व में सहिष्णुता एवं व्यापक दृष्टिकोण विकसित कर मानसिक संताप को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

6. चार्वाक दर्शन में दुःख का निषेध : भारतीय दर्शन की चर्चा चार्वाक (लोकायत) के बिना पूर्ण नहीं होती, जिसे प्रायः भौतिकवादी नास्तिक दर्शन कहा जाता है। **चार्वाक दर्शन** ने आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म आदि अदृश्य सत्ताों को मानने से इनकार करते हुए प्रत्यक्षभोग्य भौतिक जगत को ही सत्य माना। चार्वाक मत में जीवन का ध्येय सुख भोगना है, दुःख या पाप-पुण्य की चिंता करना व्यर्थ है क्योंकि न मरने के बाद कोई संसार है, न आत्मा बचती है। चार्वाकों का प्रसिद्ध कथन है: "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥" – जब तक जीवित हो सुख से जियो, ऋण लेकर भी घी पीओ (इंद्रिय सुख भोगो); क्योंकि जब यह शरीर मरकर भस्म हो जाएगा तो फिर कहाँ लौटकर आने वाला है। यह उक्ति स्पष्ट रूप से आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म को नकारती है तथा इहलौकिक भोग को ही एकमात्र मूल्य बताती है। चार्वाकों के लिए दुःख कोई गहन दार्शनिक समस्या नहीं, बल्कि अल्प सुख के अभाव का स्वाभाविक परिणाम मात्र है। उनका मत था कि जो चीज़ अभी प्रत्यक्ष सुख दे, वही करो, भले ही वह नैतिक दृष्टि से अनुचित मानी जाए या भविष्य में कष्टकारक हो – क्योंकि भविष्य की चिंता में वर्तमान के सुख को क्यों छोड़ें। चार्वाक मत "आत्मज्ञान से मिलने वाले परम सुख" या "मोक्ष रूपी आनंद" को कोरी कल्पना मानता था और कहता था कि दुःख से स्थायी मुक्ति का कोई परलोक नहीं होता, अतः यथासंभव दुःख से बचते हुए सुख भोगना ही बुद्धिमानी है (नायक 71)। चार्वाक दर्शन ने वेद-परलोक-कर्मफल की खुलकर निंदा की और उन्हें रुढ़िवादी ब्राह्मणों द्वारा गढ़ी गई कल्पनाएँ बताया। यद्यपि चार्वाक दर्शन मुख्य धारा में अधिक समय तक टिक नहीं सका, फिर भी उसने भारतीय चिंतन को एक विरोधी ध्रुव प्रदान किया। आधुनिक भौतिकवादी दृष्टिकोण में चार्वाक के दर्शन की प्रतिछाया दिखाई देती है – आज बहुत से लोग शरीर और इंद्रिय-सुख को ही जीवन का उद्देश्य मानकर भोगवाद में लिप्त हैं। लेकिन इसका परिणाम क्या हुआ? अत्यधिक भौतिक समृद्धि के बावजूद आज की पीढ़ी अभूतपूर्व मानसिक तनाव, असंतोष और अकेलेपन का शिकार है। इससे स्पष्ट होता है कि चार्वाक के सरलीकृत सुख-सिद्धांत से मानव के गहन दुःख का समाधान संभव नहीं। भारतीय परंपरा ने चार्वाक विचारधारा की आलोचना इसी आधार पर की थी कि यह जीवन के गहन नैतिक-आत्मिक आयामों को नज़रअंदाज़ करती है (शर्मा 300)।

7. आधुनिक जीवन में दुःख: भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता : आधुनिक युग विज्ञान और तकनीक की चकाचौंध से भरपूर है। भौतिक स्तर पर हमने अपार उन्नति कर ली है – बीमारियों की दवाएं हैं, काम को आसान बनाने के लिए मशीनें हैं, सूचना और मनोरंजन के अनंत साधन हैं। फिर भी, क्या मानव **दुःख** कम हो गया है? शायद नहीं – बल्कि रूप बदलकर नए-नए तनावों ने हमें घेरा है। आज तनाव, चिंता और अवसाद जैसे मानसिक दुःख विश्वव्यापी महामारी का रूप ले चुके हैं। प्रतियोगी जीवनशैली, टूटते सामाजिक बंधन, उपभोक्तावाद और पर्यावरणीय असंतुलन ने आधुनिक मानव के भीतर एक गहरे असंतोष को जन्म दिया है। इस परिदृश्य में प्राचीन भारतीय दर्शन के आलोक में हमें मूल्यवान मार्गदर्शन मिल सकता है।

पहला सबक जो भारतीय दर्शन देता है, वह है **दुःख का यथार्थबोध और स्वीकार**. जब तक हम दुखों के अस्तित्व से मुँह मोड़ते रहेंगे, हम उनका समाधान नहीं ढूंढ पाएंगे। बुद्ध ने दुःख को "आर्य

सत्य" का दर्जा दिया – अर्थात् उसे समझना आत्मज्ञान की दिशा में प्रथम कदम है। गीता में भी भगवान कृष्ण अर्जुन को संसार की नश्वरता व दुःखस्वरुपता का प्रत्यक्ष सामना करने को कहते हैं और अपने कर्तव्य-पथ पर अविचलित रहने की प्रेरणा देते हैं। आधुनिक जीवन में हम अक्सर दुखद पहलुओं से भागने की प्रवृत्ति रखते हैं – मनोरंजन, नशा, डिजिटल दुनिया में खो जाना – ये सब पलायन के तरीके हैं। परंतु भारतीय चिंतन सिखाता है कि दुःख से भागने के बजाय उसके कारणों की पड़ताल करें। चाहे वह अविद्या हो, तृष्णा हो, अहंकार हो या कर्मबंधन – मूल कारण को पहचान कर ही उपचार संभव है। आज मनोचिकित्सा भी "स्वीकृति चिकित्सा" आदि के माध्यम से यही सिखा रही है कि अपनी पीड़ा को पहचानों, उसे नाम दो – ताकि उससे निपटा जा सके। यह बुद्ध के "दर्शन" दृष्टिकोण से मेल खाता है।

दूसरा महत्वपूर्ण पाठ है **आत्मानुशासन और मानसिक रूपांतरण**. सांख्य-योग बताते हैं कि दुःख का नाश बाह्य परिस्थितियों को बदलने से नहीं, मनोवृत्तियों को बदलने से होगा। आज के उपभोक्तावादी दौर में हम सोचते हैं कि नए भौतिक पदार्थ या उपलब्धियाँ हमें खुशियां देंगी, लेकिन अक्सर वे अस्थायी सुख के बाद और गहरी खालीपन छोड़ जाती हैं। योग-दर्शन का समाधान है – मन की वृत्तियों का नियमन करके भीतर एक ऐसी स्थिरता प्राप्त करना जो बाहरी उतार-चढ़ाव से प्रभावित न हो। ध्यान, योगासन, प्राणायाम जैसे अभ्यास आज करोड़ों लोगों के जीवन का हिस्सा बन रहे हैं और वैज्ञानिक शोध भी इनके तनाव-निवारक लाभ दिखा रहे हैं। यह सीधे-सीधे पतंजलि के योगसूत्रों की ही जीत है, जहां वे कहते हैं कि "विभिन्न अभ्यासों से चित्त की अशुद्धियाँ नष्ट होती हैं और ज्ञान का प्रकाश प्रकट होता है" (योगसूत्र 2.28)। आधुनिक कॉर्पोरेट जगत से लेकर शैक्षिक संस्थानों तक माइंडफुलनेस मेडिटेशन अपनाया जाना इस बात का प्रमाण है कि 2,000 वर्ष पुरानी भारतीय विधियाँ आज भी मानवीय दुखों को कम करने में सक्षम हैं।

तीसरा, **कर्तव्य और नैतिकता** द्वारा दुःख पर नियंत्रण का सिद्धांत है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि अपना स्वधर्मपूर्वक कर्म करते हुए फल की आसक्ति त्याग दो – इससे मानसिक संताप खत्म होगा और अनाशक्ति योग से स्थायी शांति मिलेगी (भागवद गीता 2.47, 12.12)। आज अनेक लोग कार्यस्थल की प्रतिस्पर्धा और जीवन की अनिश्चितताओं से चिंतित रहते हैं। गीता का निश्काम कर्मयोग सिद्धांत सिखाता है कि पूर्ण समर्पण और ईमानदारी से कर्म करो, पर फल को परम सत्ता पर छोड़ दो – इससे अनावश्यक चिंता और दुःख नहीं व्यापेंगे। इसी प्रकार जैन धर्म का अनुरुप सिद्धांत है – वितरागता। आधुनिक मनोविज्ञान में भी सेना की टुकड़ी की कला पर जोर दिया जाता है कि अत्यधिक जुड़ाव और नियंत्रण की इच्छा दुख को बढ़ाती है। ये सारी धाराएँ भारतीय दर्शन के सतत प्रभाव को ही दर्शाती हैं।

चौथा, **दृष्टिकोण में परिवर्तन**: भारतीय दर्शन कहता है कि अपने को सीमित देह-मन नहीं, अपितु व्यापक आत्मा मानो। उपनिषद् में कहा गया "अहम् ब्रह्मास्मि" – जब व्यक्ति यह आत्मबोध करता है, तो उसके लिए व्यक्तिगत दुःख बहुत क्षुद्र हो जाते हैं, वह समस्त विश्व को अपना अंश मानकर चलने लगता है। इस भावना से करुणा और सह-अनुभूति पनपती है। आज की दुनिया में अवसाद का एक बड़ा कारण अलगाव और अस्थिर पहचान है। यदि वेदांत की विश्व-बंधुत्व और आत्म-विस्तार की भावना को अपनाया जाए, तो व्यक्ति स्वयं को ब्रह्मांड की शाश्वत कहानी का अंग मानकर भारी अकेला और त्रासदियों को भी एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख सकता है। मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ भी मानते हैं कि आध्यात्मिक जुड़ाव अवसाद-पीड़ा को कम करती है – भारतीय दर्शन तो सदा से "वसुधैव कुटुम्बकम" और सर्वात्मभाव का संदेश देता आया है।

अंत में, **भौतिकवाद बनाम अध्यात्म**: चार्वाक दृष्टिकोण आधुनिक युग में प्रबल है –

"अधिक से अधिक उपभोग करो, क्योंकि जीवन बस यही है।" मगर हमने देखा कि यह अंततः दुःख की नई परतें ही जोड़ रहा है। भारतीय मनीषियों ने भौतिक सुखों को न पूरी तरह नकारा, न उनका अतिवादी समर्थन किया – उन्होंने इंद्रिय-सुख को **क्षणिक** (क्षणभंगुर) कहा और आत्मिक आनंद को **शाश्वत**। गीता (5.22) में स्पष्ट कहा है: "इंद्रिय विषयों का संपर्क दुःख का कारण हैं, बुद्धिमान व्यक्ति उनमें आनंद नहीं ढूंढते"। इसके विपरीत आत्मिक आनंद (ब्रह्मानंद) को "अक्षय सुख" बताया गया है। यह सिद्धांत आज और भी प्रासंगिक हो उठता है जब भौतिकवादी खोज ने मानव को बाहरी रूप से समृद्ध लेकिन आंतरिक रूप से दरिद्र बना दिया है। सुख के साधनों की भरमार है, पर संतोष दुर्लभ है। ऐसे में भारतीय दर्शन का सूत्र – स्थायी सुख बाहर नहीं, भीतर है – मार्गदर्शक बन सकता है।

8. निष्कर्ष : भारतीय दर्शन ने सहस्राब्दियों पूर्व जीवन के सबसे कठोर सत्य "दुःख" को पहचाना और विविध दर्शनों के माध्यम से उसके कारणों व निवारण की गहन व्याख्या प्रस्तुत की। वेदों-उपनिषदों ने बताया कि आत्मज्ञान द्वारा अज्ञानजनित दुःख का अंत संभव है; गीता ने समत्व और समर्पण द्वारा जीवन के द्वंद्वों में संतुलन रखना सिखाया; सांख्य-योग ने दार्शनिक विवेचना और मनोवैज्ञानिक साधना द्वारा त्रिविध दुःखों से मुक्ति का मार्ग दिखाया; बुद्ध ने चार आर्य सत्यों के माध्यम से दुःख को जीवन के केंद्र में रख उसका व्यावहारिक इलाज बताया; जैनों ने कर्म-सिद्धांत के जरिए दुःख के नैतिक कारणों पर प्रकाश डाला; यहां तक कि चार्वाकों ने भी (यद्यपि प्रतिकूल रूप में) इस विमर्श में योगदान किया कि भौतिक सुख अंतिम सत्य नहीं है। इन विविध दृष्टिकोणों का सार यह है कि **दुःख सार्वभौमिक है किन्तु दुर्बाध्य नहीं** – सही ज्ञान, सही दृष्टि और सही आचरण द्वारा इसे नष्ट किया जा सकता है। सभी दर्शनों का ध्येय अपने-अपने शब्दों में "निःश्रेयस" अथवा परम शांति की उस अवस्था को पाना है जिसमें जन्म-मरण का चक्र और सभी कष्ट हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं। भारतीय परंपरा इस मुक्ति (मोक्ष/निर्वाण/कैवल्य) को जीवन का परम पुरुषार्थ मानती है, क्योंकि वहीं पूर्ण सुख है। आज के वैज्ञानिक युग में भी मानव उसी पूर्ण सुख की तलाश में है – कभी चिकित्साशास्त्र में, कभी मनोविज्ञान में, कभी कृत्रिम बुद्धिमत्ता में। लेकिन भारतीय दर्शन हमें स्मरण कराता है कि इस तलाश का अंत अपने ही भीतर है। आधुनिक मानव चाहे जितनी भौतिक उन्नति कर ले, जब तक वह अपने भीतर झाँककर आत्मिक जागृति नहीं लाता, दुःख का मूल कारण बना रहेगा।

अतः "भारतीय दर्शन में दुःख की अवधारणा" केवल ऐतिहासिक या सैद्धांतिक विषय नहीं है, बल्कि यह एक जीवनोपयोगी मार्गदर्शिका है। यह हमें सिखाती है कि **दुःख से भागो मत, उसे समझो**; **दुःख का दमन मत करो, उसे ज्ञान और योग से निर्मूल करो**; तथा **सुख के अस्थायी प्रलोभनों में उलझने के बजाय उस परम आनंद को पाने का प्रयास करो जो आत्मज्ञान या ईश्वर-साक्षात्कार से मिलता है**. इसी में आधुनिक जीवन के दर्द का इलाज निहित है। मानवता के लिए यह गौरव का विषय है कि हमारे पूर्वजों ने दुःख जैसी चुनौती का कितना गहन विश्लेषण किया और करुणा तथा बुद्धिमत्ता के साथ उसके समाधान के रास्ते खोले। आज जब पूरी दुनिया "मानसिक स्वास्थ्य संकट" से जूझ रही है, भारतीय दर्शन की ये समय-सिद्ध शिक्षाएँ एक प्रकाश-पुंज की तरह मार्ग रोशन कर सकती हैं। वास्तविक सुख की कुंजी भौतिक संसाधनों से नहीं, मन की दशा से जुड़ी है – और भारतीय विचार हमें मन की उस दशा तक पहुंचने की विधियाँ देते हैं। निष्कर्षतः, भारतीय दर्शन का दुःख-विमर्श हमें न केवल जीवन के यथार्थ को स्वीकारना सिखाता है, बल्कि उससे पार पाने के लिए एक गहन **आत्मिक मार्ग** भी प्रदान करता है, जो आधुनिक जीवन को सच में सुखी और अर्थपूर्ण बना सकता है। जैसा उपनिषद् का महामंत्र घोषणा करता है: "तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय" – हमें अंधकार (दुःख-अज्ञान) से

प्रकाश (आनंदमय ज्ञान) की ओर, मृत्युरूप दुःख से अमृतत्व की ओर जाना है। यही संदेश प्राचीन से आधुनिक तक अनंत काल के लिए मानवीय आशा एवं प्रयास का आधार बना हुआ है।

संदर्भ सूची :

1. **Bhagavad Gita.** Translated by Barbara Stoler Miller, Bantam Books, 1986.
2. **Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad.** Translated by Patrick Olivelle, The Early Upaniṣads: Annotated Text and Translation, Oxford UP, 1998, p. 66.
3. **Chāndogya Upaniṣad.** Translated by Patrick Olivelle, The Early Upaniṣads: Annotated Text and Translation, Oxford UP, 1998, p. 286.
4. Chatterjee, Satischandra, and Dhirendramohan Datta. An Introduction to Indian Philosophy. 8th ed., University of Calcutta, 1984.
5. Dasgupta, Surendranath. Yoga as Philosophy and Religion. Kegan Paul, 1924.
6. Iśvarakṛṣṇa. Sāṅkhyakārikā of Iśvarakṛṣṇa. Translated by Swami Virupakshananda, Ramakrishna Math, 1995.
7. Mondal, Mohan Kumar. "Sufferings from Sāṅkhya Perspectives." International Journal of Sanskrit Research, vol. 9, no. 5, 2023, pp. 117–120.
8. Nayak, Arbind. "Chārvākdarśanasya Sāmānyasvarūpavivecanam." International Journal of Sanskrit Research, vol. 6, no. 6, 2020, pp. 70–74.
9. Patañjali. Yoga Sūtras of Patañjali. Translated by Swami Satchidananda, Integral Yoga Publications, 2012.
10. Rahula, Walpola. What the Buddha Taught. Grove Press, 1959.
11. Roy, Apurba. "Dukkha and Māyā: The Philosophical Dimensions of Suffering in Buddhism and Vedānta." Bulletin of the Ramakrishna Mission Institute of Culture, vol. 66, no. 4, Apr. 2025, pp. 13–19.
12. Sharma, Chandradhar. A Critical Survey of Indian Philosophy. Motilal Banarsidass, 1960.
13. Smith, Huston. The World's Religions: Our Great Wisdom Traditions. HarperCollins, 1991.
14. Umāsvāti. Tattvārthasūtra (That Which Is). Translated by Nathmal Tatia, HarperCollins, 2011.
15. World Health Organization. Depression and Other Common Mental Disorders: Global Health Estimates. WHO, 2017.

•